Purva Mimaansa | Refereed | Peer Reviewed
ISSN: 0976-0237 | Volume 12, Issue March 2021 | Impact Factor 4.115

गुरुगोविन्दसिंह जी का बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तित्व 'श्रीगुरुसिद्धान्तपारिजात के परिप्रेक्ष्य में'

विशाल भारद्वाज

असिस्टैण्ट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर

चरित्र काव्य सृजन की परम्परा के अन्तर्गत संस्कृत साहित्य में अनेक ऐसे ग्रन्थ उपलब्ध हैं, जिनमें सिक्ख गुरुओं के चरित्र का निबन्धन किया गया है। इन ग्रन्थों में श्रीगुरुनानकदेवचरितम्, नानकचन्द्रोदय, दशमेशचरितम्, श्रीगुरुसिद्धान्तपारिजात, शृयंक, शीखगुरुचरितामृतम् तथा श्रीगुरुगोविन्दसिंहचरितम् आदि ग्रन्थ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। निर्मल सम्प्रदाय से सम्बन्धित संस्कृत ज्ञान से सम्पन्न श्रीहरसिंहसाधु द्वारा विरचित 'श्रीगुरुसिद्धान्तपारिजात' नामक ग्रन्थ में भारतीय संस्कृति, साहित्य तथा सभ्यता के पोषक दस सिक्ख गुरुओं के आदर्श जीवन, उनके सिद्धान्तों तथा तत्कालीन प्रमुख घटनाओं का अत्यन्त मार्मिक एवं निष्पक्ष वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

दशमगुरु श्रीगुरुगोविन्दसिंह जी बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न व्यक्तित्व से युक्त थे। इनका चरित्र वर्णन करने से पूर्व कवि ने गुरु जी के प्रति अपनी श्रद्धा को अभिव्यक्त करते हुये कहा है कि सभी देवताओं की शरणभूता, अनादि शक्ति श्रीभवानी की आराधना करके, अपने पन्थ को शत्रु–विजयी एवं दीन–रक्षक बनाकर, अन्त समय में समस्त माया–उपाधियों को त्यागकर, परम ब्रह्म ज्योति में लीन अजर, जगदीश–स्वरूप श्रीगुरुगोविन्दसिंह को अनन्त प्रणाम समर्पित है –

''यो वै शक्तिमनादिदेवशरणमाराध्य चक्रे स्वयम्
पन्थानं निखिलारिपुंजदमनं दीनैकरक्षापरम्।
त्यक्त्वा सर्वमुपाधिमन्तसमये लीनः परे ब्रह्मणि
वन्दे तं जगदीशरूपमजरं गोविन्दसिंहं गुरुम्।।''

(श्रीगुरुसिद्धान्तपारिजात, 15/1)

यद्यपि इस मंगलाचरण में ही श्रीगुरुगोविन्दसिंह जी के बहुमुखी व्यक्तित्व को प्रकाशित किया गया है, तथापि कवि हरसिंहसाधु ने अपने ग्रन्थ के पन्द्रहवें विश्राम में गुरुगोविन्द सिंह जी के चरित्र के विभिन्न पक्षों का विस्तारपूर्वक प्रतिपादन किया है, जिससे गुरु जी के बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न व्यक्तित्व का हमें साक्षात्कार होता है। श्रीगुरुसिद्धान्तपारिजात ग्रन्थ के आधार पर श्रीगुरुगोविन्दसिंह जी की चरित्रगत विशेषताओं का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है –

शस्त्रज्ञान

कवि द्वारा गुरुगाविन्दसिंह जी को धनुर्विद्या में परमनिपुण 'दूसरा श्रीरामचन्द्र' कहकर सम्बोधित किया जाना गुरु जी के धनुर्विद्या ज्ञान की कुशलता का परिचायक है –

''धनुर्विद्याप्रवीणत्वे रामचन्द्रो द्वितीयकः।...''

(श्रीगुरुसिद्धान्तपारिजात, 15/19)

श्रीगुरुगोविन्दसिंह जी के गुरुगद्दी पर विराजमान होने पर सिन्ध, पंजाब, काबुल, गांधार तथा कुरू आदि प्रदेशों से शिष्य लोग इनके पास आ पहुंचे। इन शिष्यों से आदर–सम्मान प्राप्त करने के उपरान्त गुरु जी ने उन्हें शस्त्रविद्या का उपदेश दिया, जोकि उनके शस्त्रविद्या के ज्ञान की पुष्टि करता है –

''सिन्धुमद्रादिदेशेभ्यः शिष्यसंघाः समागताः।
काबुलीयाश्च गान्धारा जंगलादिनिवासिनः।।
पूजयामासुरेनं ते मन्यमाना महेश्वरम्।
शस्त्रविद्योपदेशं तान् गुरुश्चक्रे निरन्तरम्।।''

(श्रीगुरुसिद्धान्तपारिजात, 15/3–4)

श्रीगुरुगोविन्दसिंह जी ने केवल शस्त्रज्ञान ही प्रदान नहीं किया, अपितु उन शिष्यों की वीरता की सुपरीक्षा हेतु 'भंगाणी' नामक गांव में भीमचन्द्र आदि अपने शिष्यों से प्रथम युद्धाभ्यास भी किया–

''भीमचन्द्रादिभिः साकं कृतं युद्धं परीक्षणे।
भंगाणी नामके ग्रामे शिष्यसंघस्य चादिमम्।।''

(श्रीगुरुसिद्धान्तपारिजात, 15/5)

शत्रु सेना द्वारा चारों ओर से घिर जाने पर गुरुगोविन्द सिंह जी घबराने की अपेक्षा उसी प्रकार अत्यन्त प्रसन्न हुये, जिस प्रकार भेड़–बकरियों की कतारों को देखकर सिंह आनन्द मनाता है। तब गुरु जी ने सहसा न्यारी युद्ध क्रीड़ा का आश्रय लेते हुये अपने शिष्यों को शत्रु संहार का मार्ग बताया –

''व्यूहाकारं बलं दृष्ट्वा हर्षयुक्तो बभूव ह।
एडिकाराशिमापश्यन् यथा सिंहो गुरूत्तमः।।
आह सिंहानथो देवो गम्यतां भो दिगन्तरम्।
भक्षयित्वा निजं भक्ष्यं तच्च मार्गे हि विद्यते।।
स्वस्य लीलाविकाशोऽपि मया कार्योऽधुना पृथक्।
पूर्वलीलासकाशात्स विपरीतो भविष्यति।।''

(श्रीगुरुसिद्धान्तपारिजात, 15/41–43)

शस्त्रज्ञान के साथ–साथ गुरु जी ने अपने साथ द्वन्द्व युद्ध कर रहे सैदखान को अपने अद्भुत बल–पराक्रम से युद्धविरत कर डाला –

''द्वन्द्वं युद्धं ततो जातं सैदखानेन सद्गुरोः।

सुप्रसन्नो बभूवासौ तस्य दृष्ट्वाथ पौरुषम्।।''

(श्रीगुरुसिद्धान्तपारिजात, 15/23)

न्यायपालक

दण्ड प्रणाली का नियम है कि दण्ड व्यवस्था ऐसी होनी चाहिये कि जिसमें दण्डनीय व्यक्ति को छोड़ा न जाये तथा निरपराधी को दण्डित न किया जाये –

''दण्ड्यस्यादण्डनान्नित्यमदण्ड्यस्य च दण्डनात्।
अतिदण्डाच्च गुणिभिस्त्यज्यते पातकी भवेत्।।''

(शुक्रनीति, 4/1/15)

श्रीगुरुगोविन्दसिंह जी इस सिद्धान्त से पूर्णतः परिचित थे। मसन्दों की कार्यप्रणाली से गुरु जी अप्रसन्न थे। अतः उन्होंने सभी ओर से उन मसन्दों को बुलाकर उनकी योग्यता तथा पात्रता आदि का सुनिर्णय किया तथा दण्डनीय को दण्ड तथा दया के योग्य को क्षमा करते हुये श्रेष्ठ न्यायप्रणाली का परिचय दिया –

''तानाहूयाथ देशेभ्यो निर्णीयाथापि योग्यताम्।
ददौ दण्डं मसन्देभ्यऽयोऽनुग्रहं च चकार ह।।''

(श्रीगुरुसिद्धान्तपारिजात, 15/14)

अद्भुत स्मरणशक्तिसम्पन्न

एक बार श्रीगुरुगोविन्दसिंह जी ने अपने वंश के एक पूर्व व्यक्ति धीरमल्ल के पास से पूर्व गुरुओं द्वारा रचित 'श्रीगुरुग्रन्थसाहिब' को लाने के लिये अपने शिष्यों को प्रेषित किया –

''प्राह शिष्यांश्च गन्तव्यं धीरमल्लस्य सन्निधौ।
आनेयश्च ततो ग्रन्थः सद्गुरोर्मोक्षसाधनम्।।''

(श्रीगुरुसिद्धान्तपारिजात, 15/107)

धीरमल्ल ने उत्तर में व्यंग्यात्मक सन्देश भेजा कि 'श्रीगुरुग्रन्थसाहिब' को गुरु जी के पिता श्रीगुरुतेगबहादुर जी ने ऐसा कहकर कि 'किसी ग्रन्थ के आधार पर किसी की पूजा न करना ही उचित है। हम तो स्वयं ही पूजनीय हैं' नदी में प्रवाहित कर दिया था। अब उनके पुत्र को इस ग्रन्थ की क्या आवश्यकता पड़ गयी ? वह तो अपना नया ग्रन्थ उसी प्रकार बनायेगा, जिस प्रकार उसने नया पन्थ प्रारम्भ किया है –

''ग्रन्थाश्रिता न पूजास्ति स्वयं पूज्या वयं यतः।
मनस्येवास्ति मे सर्वमिति मत्वा विसर्जितः।।
तस्य पुत्रस्य कापेक्षा ग्रन्थपत्रावलोकने।
निर्मास्यति स्वयं ग्रन्थं यथा पन्थास्तु निर्मितः।।''

(श्रीगुरुसिद्धान्तपारिजात, 15/110–111)

इस व्यंग्यपूर्ण प्रत्युत्तर को सुनकर पांचों गुरुशिष्य श्रीगुरुगोविन्दसिंह जी के पास लौट आये

PURVA MIMAANSA

तथा समस्त वृत्तान्त गुरु जी को सुनाया। यह बात सुनकर श्रीगुरुगोविन्दसिंह जी ने एकान्त में केवल वस्त्रों से आच्छादित मण्डप में आसन लगाकर सारा 'श्रीगुरुग्रन्थसाहिब' भाई मनीसिंह को सुनाया एवं भाई मनीसिंह ने सावधानीपूर्वक सुना तथा साथ–साथ लिखकर अति सुन्दर पुस्तकाकार मे संग्रहीत कर लिया –

''इदं श्रुत्वा स एकान्ते वस्त्रसाध्यगृहान्तरे।
गुरुग्रन्थो मनीसिंहं श्रावितो गुरुसत्तमैः।।
तेन श्रुत्वा लिखित्वा च कृतं चारु हि पुस्तकम्।...''

(श्रीगुरुसिद्धान्तपारिजात, 15/113–114)

यह दृष्टान्त श्रीगुरुगोविन्दसिंह जी की अद्भुत स्मरणशक्ति को अभिव्यक्त करता है।

धर्मसंरक्षक :

सैदखान को उपदेश देते हुये गुरु जी बताते हैं कि लौकिक व्यवहार का जो प्रदर्शन वे कर रहे हैं, वह सब एकमात्र धर्मरक्षा के निमित्त है। अपने समय पर यह सब लीला स्वयमेव विलीन हो जायेगी। तब पुत्र–स्त्री आदि से उनका कोई भी सम्बन्ध विशेष नहीं रहेगा –

''इयं चापि मया लीला निर्मिता धर्मरक्षणे।
पुत्रभार्यादिसम्भिन्ना स्वयं लीना भविष्यति।।''

(श्रीगुरुसिद्धान्तपारिजात, 15/30)

अपने पुत्रों के बलिदान पर शोकावस्था में गुरु जी का कथन है कि उन्होंने यथासम्भव धर्मरक्षा तथा सिंह–दीक्षा देकर खालसा पन्थ की स्थापना कर दी है। अब धीरे–धीरे सिंह–शिष्य दुष्टदमन करते चले जायेंगे –

''धर्मरक्षा कृता साधो मया पन्थाश्च निर्मितः।
शनैः सिंहाः करिष्यन्ति दुष्टनाशं न संशयः।।''

(श्रीगुरुसिद्धान्तपारिजात, 15/57)

श्रीगुरुगोविन्दसिंह जी के तुल्य ऐसा कौन वीर–पुरुष इस कलिकाल में होगा, जिसने धर्मसंरक्षण हेतु हाथ में तलवार उठायी हो तथा धर्मानुयायी मानवों की मानवता के हित में सिंहरूप धारण किया हो –

''धृतो येन खंगः कृता धर्मरक्षा सतां रक्षणे निर्मितः सिंहवेषः।
कलौ काल एतादृशः कोऽस्ति वीरस्तमीशं नमामीति गोविन्दसिंहम्।।''

(श्रीगुरुसिद्धान्तपारिजात, 15/271)

औरंगजेब के अत्याचारों से सन्तप्त कश्मीरी पण्डितों के धर्म–संरक्षण हेतु अपने पिता को बलिदान के लिये गुरुगोविन्दसिंह जी द्वारा प्रेरित किये जाने से बढ़कर धर्मसंरक्षण के अभिप्राय को प्रकट करने वाला कोई अन्य दृष्टान्त मिलना लगभग असम्भव प्रतीत होता है।

श्रेष्ठ राजनीतिज्ञ

श्रीगुरुगोविन्दसिंह जी एक कुशल एवं श्रेष्ठ राजनीतिज्ञ थे। गुरु जी की दृष्टि में दुर्व्यसन एवं मृत्यु, इन दोनों में से व्यसन अधिक हानिकारक हैं। व्यसनग्रस्त व्यक्ति का तो नित्य अधःपतन होता रहता है, जबकि व्यसनहीन का मृत्यु के पश्चात् भी अभ्युदय होता है –

''व्यसनस्य च मृत्योश्च व्यसनं कष्टमुच्यते।
अधोऽधो व्यसनी नित्यं स्वर्गयत्यव्यसनी मृतः।।''

(श्रीगुरुसिद्धान्तपारिजात, 15/169)

इसलिये शासक के लिये कामजन्य दस (शिकार, जुआ, दिन में सोना, परनिन्दा, नारी–आसक्ति, पदान्धता, गीत–नृत्य–वाद्यादि की अधीनता तथा व्यर्थ भ्रमण) तथा आठ क्रोधजन्य (पिशुनता, साधु–पीडन, द्रोह, ईर्ष्या, गुण–निन्दा, धन का दुरुपयोग, वाणी तथा दण्ड द्वारा अत्युग्रता) व्यसनों को गुरुगोविन्दसिंह जी ने पतन का मूल हेतु स्वीकार किया है। अतः गुरु जी के मतानुसार श्रेष्ठ शासक को चाहिये कि वह इन व्यसनों से दूर रहते हुये इन्हें कभी न अपनाये –

''दश कामसमुत्थानि तथाष्टौ क्रोधजानि च।
व्यसनानि दुरन्तानि प्रयत्नेन विवर्जयेत्।।
मृगयाक्षो दिवास्वप्नः परिवादः स्त्रियो मदः।
तौर्यत्रिकं वृथाट्या च कामजो दशको गणः।।
पैशुन्यं साहसं द्रोह ईर्ष्यासूयार्थदूषणम्।
वाग्दण्डजं च पारुष्यं क्रोधजोऽपि गणोष्टकः।।''

(श्रीगुरुसिद्धान्तपारिजात, 15/161, 163–164)

शासक के लिये राष्ट्र की रक्षा करना सबसे बड़ा धर्म है। श्रीगुरुगोविन्दसिंह जी ने शासक को उपदेश दिया है कि जिस प्रकार छांट करने वाला कृषक धान्य के छिलकों को अलग–अलग कर धान्य को बचा लेता है, ठीक उसी प्रकार शासक भी अपने विरोधियों को दमन कर राष्ट्र की सुरक्षा करे –

''यथोद्धरति निर्धाता कक्षं धान्यं च रक्षति।
तथा रक्षेन्नृपो राष्ट्रं हन्याच्च परिपन्थिनः।।''

(श्रीगुरुसिद्धान्तपारिजात, 15/191)

शास्त्रज्ञाता

वेदान्त के सिद्धान्तानुसार जीव तथा ब्रह्म में अभेद है –

''जीवब्रह्मैक्यं शुद्धचैतन्यं प्रमेयं तत्र एव वेदान्तानां तात्पर्यात्।।''

(वेदान्तसार, पृष्ठ संख्या – 58)

केवल अज्ञानवश वह ब्रह्म सर्वशक्तिमान् तथा जीव अल्पशक्तिसम्पन्न दृष्टिगोचर होता है।

PURVA MIMAANSA

महावाक्यार्थ ज्ञान हो जाने पर यह भेद समाप्त हो जाता है –

''इदं तत्त्वमसीति वाक्यं सम्बन्धत्रयेणाखण्डार्थबोधकं भवति।।''

(वेदान्तसार, पृष्ठ संख्या – 107)

इन दार्शनिक सिद्धान्तों का श्रीगुरुगोविन्दसिंह जी को पूर्ण ज्ञान था। सैदखान को उपदेश देते हुये गुरु जी कहते हैं कि यह समस्त संसार जिससे उत्पन्न हुआ है, उसे ब्रह्म तथा स्वल्प शक्तिमान् लगने वाला चेतन ही यह जीव है, ऐसा समझो। परन्तु चेतन ब्रह्म तथा चेतन जीव में भेद का कारण केवल उपाधि, माया अथवा अज्ञान ही है। ज्ञान के द्वारा अज्ञान के बाधित हो जाने पर 'मैं ही ब्रह्म हूं' यह जानकर प्रबुद्ध पुरुष को जीव–ब्रह्म एकता का आभास हो जाता है, जिसके परिणामस्वरूप वह किसी से वृथालाप नहीं करता –

''इदं विश्व यतो जातं ब्रह्म विद्धि तदेव हि।
अयं जीवो यदल्पज्ञं दृश्यते सैद चेतनम्।।
विनोपाधिद्वयं साधो विद्यते न भिदा चिताः।
तदेवाहमिति ज्ञात्वा नैव केनाप्यसौ वदेत्।।''

(श्रीगुरुसिद्धान्तपारिजात, 15/25–26)

वेदान्त के मतानुसार मनुष्य के प्रारब्धकर्म कभी भी नष्ट नहीं होते। जीवन्मुक्त अवस्था में भी प्रारब्धकर्मों के फल की समाप्ति तक जीवन को धारण करना ही पड़ता है –

''अयं तु व्युत्थानसमये मांसशोणितमूत्रपुरीषादिभाजनेन शरीरेणान्ध्यमान्द्यापटुत्वादि–भाजनेन्द्रियग्रामेणाशनायापिपसाशोकमोहादिभाजनेनान्तः करणेन च पूर्वपूर्ववासनया क्रियमाणानि कर्माणि भुज्यमानानि ज्ञानाविरुद्धारब्धफलानि च पश्यन्नपि बाधितत्वा–त्परमार्थतो न पश्यति। यथेन्द्रजालमिति ज्ञानवांस्तदिन्द्रजालं पश्यन्नपि परमार्थमिद–मिति न पश्यति।।''

(वेदान्तसार, पृष्ठ संख्या – 133)

इसी बात का समर्थन करते हुये श्रीगुरुगोविन्दसिंह जी का कहना है कि अपने पूर्व–कर्मों से जीव का कभी भी छुटकारा नहीं हो सकता। उन कर्मों का फल उसे भोगना ही पड़ता है। उदाहरणतः यह पूर्वजन्मकृत कर्मों का फल है कि लंका–युद्ध में मूर्च्छित हुये लक्ष्मण के लिये भगवान् श्रीरामचन्द्र को अति व्याकुल होना पड़ा। भले ही पाण्डवों ने भी धर्मरक्षा के निमित्त महाभारत का युद्ध किया था, परन्तु भगवान् श्रीकृष्ण के रहते हुये भी प्रारब्धकर्मवश पाण्डव अपने पुत्रों से वियुक्त हो गये–

''धर्मरक्षाकृते चक्रुराहवं भुवि पाण्डवाः।
कृष्णदेवस्य सत्वेऽपि गताः पुत्रविहीनताम्।।
अतो जाने पुराकृत्यान्नैव जीवो विमुच्यते।

PURVA MIMAANSA

मूर्च्छितं लक्ष्मणं दृष्ट्वा रामचन्द्रः शुशोच ह।।''

(श्रीगुरुसिद्धान्तपारिजात, 15/55–56)

उपर्युक्त ये समस्त कथन श्रीगुरुगोविन्दसिंह जी के शास्त्रज्ञान के द्योतक हैं। शास्त्रज्ञ होने के साथ–साथ गुरु जी एक महान् लेखक भी थे। शास्त्रज्ञानसम्पन्न होते हुये गुरु जी ने अपने शत्रुओं के संहार के लिये एक पुस्तक भी लिखी तथा अपने अनुयायियों के पास भिजवायी, ताकि वे लोग उसे पढ़कर उससे लाभ उठा सकें –

''तत एवारिघाताय पुस्तकं निजनिर्मितम्।
प्रेषितं मारयित्वा तं दयासिंहः समागतः।।''

(श्रीगुरुसिद्धान्तपारिजात, 15/80)

अतः उपर्युक्त विशेषताओं के अतिरिक्त और भी अनेक विशेषतायें श्रीगुरुगोविन्दसिंह जी के भीतर विद्यमान थीं, जिनका अत्यन्त सुन्दर तथा मार्मिक वर्णन कवि हरसिंहसाधु ने अपने ग्रन्थ 'श्रीगुरुसिद्धान्तपारिजात' में किया है, जोकि गुरु जी के बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न व्यक्तित्व का ज्ञान करवाने में अत्यन्त सहायक है।

सन्दर्भ सूची

श्रीगुरुसिद्धान्तपारिजात, श्रीहरसिंह साधु, श्रीराम प्रकाशन, 122, श्रीरघुनाथपुरा, जम्मू, 1974.

शुक्रनीति, महर्षि शुक्राचार्य, डॉ जगदीशचन्द्र मिश्र (व्याख्याकार), चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 1988.

वेदान्तसार, सदानन्दयोगीन्द्र, साहित्य भण्डार, मेरठ, 1984.

PURVA MIMAANSA